नारी परिभाषा एवं स्वरूप

डॉ. पोरिका नागमणी

सहायक अद्यापिका (हिन्दी विभाग), शास्क्रीया स्नातक महाविध्यालय मुलुगु, मुलुगु जिला (506343) (T.S)

प्रत्येक शब्द का इतिहास है उसका स्वतन्त्रा अस्तित्व है। शब्द अपने वाच्य के स्वरूप का भी संकेत करता है। नारी अर्थ के बोधक शब्द भी नारी के स्वरूप पर बहुत प्रकाश डालते है कवियों की दृष्टि में नारी मायासी, दुर्बोध, प्रकृति-सी बहुरूपी, साथ ही सहानुभूति-सी सरल रही है। यदि शब्दों के विकास के साथ मानव सभ्यता के विकास का अध्ययन किया जाए तो जान पड़ेगा कि नारी उतने ही अश में रहस्यमयी है, जितने अंश में संसार की कोई भी वस्तु विषम समाज में विषम स्थिति होने के कारण नारी के विभिन्न स्वरूप होते गए। मानव को नारी के साथ शारीरिक , रागात्मक और धार्मिक सम्बन्ध होने के कारण नारी के स्वरूप भेद हुए ये भेद प्रभेद इतने जटिल बन गए है , कि आज शब्द के आधार पर नारी के वास्तविक स्वरूप को समझना कठिन है किसी एक शब्द से नारी के स्वरूप की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती पिफर भी जिस तरह एक छोटे से ओस बिन्दु में सम्पूर्ण सूर्यमण्डल प्रतिबिम्बित हो जाता है, उसी प्रकार नारी-वाचक छोटे-से-छोटे शब्द में भी उसकी जाति, उसके गुण, उसकी क्रिया अथवा इच्छा अलक जाती है साथ ही नाम रखने वाले समाज की मानसिक स्थिति , बीकि उन्नति और सांस्कृतिक चेतना भी व्यक्त हो जाती है।

प्राणी जगत में नारी शब्द नर के समानान्तर है इसका प्रयोग स्त्रीलिंग याची मादा प्राणियों के रूप में होता है किन्तु मानव समाज में नारी शब्द इस सामान्य अर्थ में गृहित नहीं है , क्योंकि उसका स्थान नर से कहीं बढ़कर है। यही नहीं , रूप आकार शरीर संगठन, कार्य-व्यापार एवं जीवन-यापन की विविध स्थितियों में नारी विधाता की उच्चतम परिकल्पना सिद्ध हुई है पिफर भी नारी की परिभाषा और स्वरूप को अच्छी तरह जानने के लिए नारी शब्द की व्युत्पत्ति को जानना बहुत आवश्यक है।

नारी शब्द की व्युत्पत्ति :

नारी शब्द न अथवा नर से बना है। नृ+घीष नारी नरस्य समान धर्मा नारी , नृ+अ+धीन नारी ॥1नारी शब्द नर से उत्पन्न माना जाता है। यास्क ने नर शब्द को नृत से बनाया है- नराः नृत्यन्ति कर्मसु अर्थात् काम की पूर्ति के लिए मनुष्य हाथ पैर नचाता है। नारी के लिए स्त्री शब्द का प्रयोग भी होता है। यह शब्द उसे पुरुष के लैंगिक सहयोगी के रूप में स्त्री की व्युत्पत्ति के विषय में निरुक्तकार का मत है कि स्त्री शब्द स्त्राये धातु से बना है यास्क के मतानुसार स्त्रार्य का अर्थ लज्जा से सिकुड़ना है। टीकाकार दुर्गाचार्य नारी की स्त्री संज्ञा उसके लज्जाशील होने के कारण मानते है किन्तु पाणिनी के धातु

पाठ में'स्त्राये का अर्थ लजाना नहीं मिलता धातुपाठ के अनुसार स्त्रायै शब्द का अर्थ है शब्द करना तथा इक्ट्ठा करना जान पड़ता है कि नारी का स्त्री नाम सम्भवतः उसके वाचाल होने के कारण ही पड़ा। महर्षि पंतजलि ने अपनी अष्टाध्यायी ' में समझाया है कि नारी को स्त्री इसलिए कहते हैं कि गर्भ की स्थिति उसके भीतर रहती है। उन्होंने एक दूसरी व्युत्पत्ति भी की है- शब्द स्पर्श रूप सगंधाना गुणानां स्त्रायान- संघातम-स्त्री अर्थात् शब्द , स्पर्श, रूप, रस और गंध इन सब का समुच्चय ही स्त्री है। इससे स्पष्ट है कि नारी शब्द की व्युत्पत्ति अनेक शब्दों से मानी गयी है।

नारी भारतीय विद्वानों के मत

1. प्रेमचन्द जी के मतानुसार पुरुष विकास के क्रम में नारी के पीछे पीछे है जिस दिन यह भी पूर्ण विकास तक पहुंचेगा। वह स्त्री हो जाएगा। वात्सल्य , स्नेह, कोमलता, दया इन्ही आधारों पर सृष्टि थमी हुई है और ये स्त्रियों के गुण है।

2. स्वामी विवेकानंद जी के अनुसार पस्त्री पूजन से ही समाज की प्रगति होती है जिस देश अथवा समाज में स्त्री पूजन नहीं होता वह देश अथवा समाज कभी ऊँचा नहीं उठ सकता। पश्चिमी देशों के अधःपतन का कारण उन्होंने शक्तिरूपिणी स्त्री की अवहेलना माना है । 2

'चेतना' की व्याख्या

चेतना प्राणी मात्रा में रहने वाला वह तत्व है जो उसे निर्जीव जड़ पदार्थों से भिन्नता प्रदान करता है पितृ संज्ञा मे पातु में युच अन टाप प्रत्ययों के संयोग से चेतना शब्द की निष्पत्ति होती है। जिसका अभिप्राय है मन की यह वृत्ति या शक्ति जिससे जीव या प्राणी को आन्तरिक अनुभूतियों भाषा विचारों आदि तथा बाहय घटनाओं तत्वों या बातों का अनुभव या भान होता है । 3

चेतना शब्द की व्युत्पत्ति से भी इसी आशय की पुष्टि होती है। अमरकोष में इसको बु भगवद्गीता में ज्ञानात्मिका मनोवृत्ति तथा दर्शन में इसको स्वयं प्रकाश तत्त्व कहा गया है। विज्ञान के अनुसार चेतना वह अनुभूति है जो मस्तिष्क में पहुंचने वाले अभिगामी आवेगों से उत्पन्न होती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से चेतना मानय में उपस्थित यह सत्य है जिसके कारण उसे सभी प्रकार की अनुभूति होती है। संरचनावादी मनोवैज्ञानिक विल्हम पुट के अनुसार चेतना में संवेदना , विचार, भावना तथा इच्छा सम्मिलित है उसके अनुसार चेतना का अनुभव दो प्रकार का होता है- संवेदना तथा भावना संवेदना बाहा जगत से आती है और भावनाएँ आन्तरिक होती है। 4

चेतना का विकास

चना का विकास विभिन्न तत्वों और स्थितिया के संयोग और संस्कारों से होता है सामाजिक वातावरण और इतिहास बोध का इसको विकसित करने में प्रमुख हाथ रहता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने वंशानुक्रम की प्रस्तुति स्वयं में करता है। विशिष्ट प्रकार के संस्कार पैत्रिक दाय के रूप में ग्रहण करके विकसित

करता है क्योंकि उसने विभिन्न प्रकार की शिक्षा एवं प्रशिक्षण विविध रूप में प्राप्त किया है। वातावरण और इतिहास बोध के प्रभाव से उसमें नैतिकता , औचित्य, व्यवहार कुशलता, सौन्दर्यबोध आध्यात्मिक बोध के प्रति जागरूकता आती है। यही चेतना का विकास है। हिन्दी के समीक्षा क्षेत्र में चेतना शब्द का प्रयोग अंग्रेजी कान्हासनेस शब्द के अर्थ में ही प्रायः किया जाता है। पड़ॉ. हरदेव बाहरी ने कान्शसनेस के अनेक अर्थ दिए है जिनमें मुख्य प्रतिबोध घेत चेतना , संज्ञा, जागृति, ज्ञान, बोध व्यक्ति की भावनाओं और विचारों की समष्टि पूर्णता । 5

चेतना के रूप एवं परिव्याप्ति :

चेतना के तीन रूप होते चेतन तन और अचेतन चेतन रूप में उन सभी बातों का समावेश किया जाता है जो हमारी गतिशीलता को जीवन्तता देती है। अवचेतन में ये सभी बातें रहती है जो हमारे ज्ञान के बाहर रहती है जो विस्मृति के अथाह सागर में पहुँच जाती है तथा स्मरण करने पर भी जिनका पुनर्भरण समय नहीं है। चेतना की अनुभूतियाँ भी कभी अवचेतन तो कभी अचेतन में परिभ्रमित रहती है व अनुभूतियाँ निष्क्रिय नहीं वरन अनजाने ही मानव को प्रभावित करती रहती है । 6

सारी सृष्टि का प्रत्येक घटक या तो जद है अथवा चेतन। जो जड़ है उसमें संवेदनात्मकता की प्रबल उत्कण्ठा और सजगता की प्रवृत्ति का एकान्तिक अभाव है। गायवादियों और आध्यात्मवादियों की दृष्टि में पदार्थ जगत चेतना जन्य है। वस्तुतः चेतना ही सारी सृष्टि का आधार है। भौतिकवादी चेतना को जड़ साथ में परम अस की विशिष्ट जातियों की परिणति स्वीकार करते हैं। सात्रों ने चेतना प्रवाहवाद को साहित्य में महत्त्वपूर्ण माना है। आत्मा और चैतन्य वह सत्य है जिसकी विवेकशक्ति मनुष्य को पशुजगत से पृथक अस्तित्व का मानती है।

चेतना एक ऐसा धर्म है जिसके आलोक में वैयक्तिक और सामाजिक जागृति का धर्म उद्दीप्त होता है। मानव सभ्यता और संस्कृति की दौड़ में सामाजिक जागृति और राष्ट्रीय राजनीतिक भावना की अनुभूतिजना चेतना ने सदैव महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

इन अर्थों के आधार पर चेतना समाज सापेक्ष होती है। सामाजिक अवनति की विविध प्रतिकूल दशाओं में जो प्रतिना शक्ति दीप्ति बनकर चमक उठे और जिसके प्रभाव से समस्त समाज में नवजागरण की लहर दौड़ जाए उसी को सामाजिक चेतना का अग्रदूत समझना चाहिए। जिस हृदय में शब्द का प्रमाण अनुप्राणित होता है. वह सच्ची प्रतिभा युग साहित्य के आयाम में सामाजिक चेतना की सत्य सृष्टि करता है, समाज को दृष्टि और जीवन देता है। किसी मनुष्य की चेतना उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति न होकर सामाजिक उपक्रम का परिणाम होती है सामाजिक चेतना को तीन विशेषताएँ है यह ज्ञानात्मक भावात्मक और क्रियात्मक होती है। युगीन सन्दर्भ में आज व्यवहार के स्तर पर जो प्रदेश है , अनुभूति के स्तर पर यही चेतना है। अंतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि विचार और अनुभूति के उद्वेलन का दूसरा नाम चेतना है।

नारी चेतना का अर्थ एवं स्वरूप

नारी शब्द नर से उत्पन्न माना जाता है तथा चेतना शब्द का अर्थ है प्राणी मात्रा में रहने वाला वह ताप है जो उस निर्जीव जड पदार्थों से मिन्नता प्रदान करता है। नारी चेतना का अर्थ हुआ नारी में निहित जागरूक शक्ति नारी समाज तथा परिवार का एक अभिन्न अंग है। जब तक नारी अपने अधिकारी तथा कर्तव्यों के प्रति सचेत नहीं होगी तब तक न परिवार ठीक से चल सकता है और न ही समाज प्राचीन काल से आज तक नारी में चेतना का निरन्तर विकास होता रहा है। यह निरन्तर विकास की सीढ़ियों पर चढ़ती रही है। नारी की प्रशंसा में शिवजी बतलाते है कि पनारी के समान न योग है , न जय है म तप है न तीर्थ है। यही इस संसार की सर्वाधिक पूजनीय देवता है क्योंकि वह पार्वती का रूप है। उसके समान न कुछ था, न ही कुछ होगा। 7

प्रारम्भ में नारी केवल एक विलास की सामग्री थी नारी के विभिन्न रूप माँ बहन पुत्री आदि अधिक विकसित न हो सके थे नारी का क्षेत्रा बहुत संकुचित था। स्त्रियों को घर की चारदीवारी के अन्दर ही रहना होता था उन्हें पढ़ने-लिखने नौकरी आदि को किसी भी प्रकार की आजादी नहीं थी नारियाँ एक प्रकार की घुटन भरी जिन्दगी व्यतीत कर रही थी। ये नारी चेतना का ही विकास है कि नारी वर्तमान में कम से क मिलाकर पुरुषों के साथ कार्य कर रही है नारी के मन में पुरुष की दासता से मुक्त होने की ललक पैदा होती है नारी अब शिक्षित भी हो चुकी है। कर्मभूमि उपन्यास की सुखदा पुलिस के सामने खड़ी होकर कहती है क्यों भाग रहे हो? यह भागने का समय नहीं छाती खोलकर खड़े होने का समय है। दिखा दो कि तुम धर्म के नाम पर किस तरह प्राणों का होम करते हो भागने वालों की कभी विजय नहीं होती । 8 इस समय स्त्रियाँ जागरूक हो चुकी है। दो पुरुषों में शक्ति का संचार है एक बार एक लेखक ने भी लिखा था कि अगर किसी देश की अवस्था का पता लगाना हो तो वहाँ की स्त्रियों की दशा जानना जरूरी है। इसका तात्पर्य है कि जो समाज जितना अधिक उन्नतिशील होगा वहाँ स्त्रियों की दशा उतनी ही विकसित होगी।

पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से भारतीय नारी ने नई रोशनी नई सभ्यता के प्रसार में देखा कि वह पति की दासी नहीं है। समाज में नारी को भी पुरुष के समान अधिकार है। बाल-विवाह , अनमेल विवाह, विधवा-विवाह और वेश्यावृति के विरु आन्दोलन चरम पर था। प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने लिखा है-स्त्री-पुरुष एक होकर रहे. दोनों में मतभेद न होने पाये स्त्री को गर्व न हो कि मैं स्वामी से बड़ी हूँ और न स्वामी को अभिमान हो कि ईश्वर ने सब बुद्धि मेरे ही हिस्से में रखी है। स्त्री घर की मालकिन है और पुरुष बाहर का लेकिन दोनों में मतैक्य हो दोनों इस पवित्रा प्रेम सूत्रा मे को हो जहाँ न राज है न अभिमान न द्वेष है और न कलह । 9 भारतीय दर्शन संस्कृति एवं समाज में नारी को बहुत गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। दर्शन नारी को प्रकृति रूपा मानता है। यह सृष्टि के मूल में है। पुरुष के रागात्मक जीवन में नारी सदैव उच्च स्थान की अधिष्ठात्री रही है। यह परिवार की संचालिका है। वैदिक साहित्य में नारों के पत्नी रूप को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। यहाँ प्रत्येक गृहस्थ द्वारा कन्या की कामना की गई है। पुत्र और

पुत्री में कोई भेद नही माना गया। पुराणकाल में कन्या को देवी रूपा स्वीकार किया गया है जबकि श्रीमदभागवत में नारी के कन्या रूप का गुणगान है।

हिन्दी - साहित्य में नारी चेतना

हिन्दी साहित्य के आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल के साथ-साथ हिन्दी गद्य साहित्य में भी नारी चेतना का विकास हुआ है उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

आदिकाल हिन्दी का आदि काव्य वीरगाथाओं तथा धार्मिक उपदेशों के रूप में लिखा गया है। पिफर भी तत्कालीन वातावरण एवं परिस्थितियों के अनुसार इस काव्य में नारी के वीरांगना एवं कामिनी दोनों रूपों के दर्शन होते है। इस काल में अधिकांश साहित्य राजकुमारियों के अपहरण तथा उनके फलस्वरूप होने वाले का वर्णन मिलता है। इस सामन्तवादी युग में नारी की स्थिति अच्छी नहीं थी। रासो काव्य की नायिकाओं के जीवन मी नारी दुर्दशा की कहानी ही कहते हैं। 10

इस काल में नारी सौन्दर्य वर्णन भी स्वस्थ मनोवृत्ति का परिचायक नहीं था। डॉ. उषा पाण्डे का यह कथन अत्यन्त समीचीन जान पड़ता है-पदीर काव्य में भी नारी का श्रृंगार- सौरभ की मादकता से बोझिल स्वरूप ही दृष्टिगत होता है उसके वीरांगना वीरमाता और क्षत्राणी के प्रांजल रूप को श्रृंगार की भूप ने प्रच्छन्न-सा कर दिया है। 11 तत्कालीन समाज में नारी विलास की सामग्री होने के कारण पुरुष की निजी सम्पत्ति ही मानी जाती थी मनुष्य स्वयं तो अपनी इच्छा से कई पत्नियाँ रख सकता था , किन्तु नारी के लिए पति की मृत्यु के पश्चात् सती हो जाना उसका कर्तव्य बना दिया गया। उपेक्षित नारीत्व इस प्रक्रिया के पफलस्वरूप श्रृंगार की प्रेरणा बन गया था।

भक्तिकाल : इस काल के साहित्य में नारी मुख्या दो रूपों में अंकित हुई एक ओर तो यह सामान्य नारी रूप में निया एवं उपेक्षा की पात्रा रही तो दूसरी ओर आराध्य देवताओं की संगिनी के रूप में सम्मानित भी हुई। एक ओर तो इस युग में निर्गुणमार्गी संत कवि थे जिन्होंने नारी को मुक्ति मार्ग की बाधा एवं पुरुष को विनाश के पथ पर ले जाने वाली माना है। कदीर ने मारी को नरक का द्वार माना है। मलूकदास नारी के नेयों को भयानक कहते हैं तथा दादूदयाल सार को पतंगा तथा कनक कामिनी को दीपक की लौ बताते है । 12

रीतिकाल : रीतिकाल में भक्तिकाव्य की उपेक्षित नारी रीतिकालीन मुक्तक काव्य में आकर्षण की केन्द्र बिन्दु नायिका बन गई और मे मुक्तिकार नायिका मेदोपमेद एवं नखशिख वर्णन में अपनी प्रतिमा का धमाकार दिखाने लगे।

उस विलासपूर्ण वातावरण में नारी का कंवल कामिनी एवं प्रेयसी रूप ही शेष रह गया। यद्यपि इस काव्य में अंकित प्रेमिकाएँ अधिकांश में परकीयाएँ ही है. जिनमें उज्ज्वल पत्नीत्व की गरिमा को खोजने

पर निराशा ही मिलती है , पिफर भी प्रिय के ध्यान में आत्मविस्मृत हो अपना ही प्रतिविम्ध दर्पण मे देखकर रीझने वाली यह प्रेमिका रूपा नारी, प्रेमिका के उत्कर्षमय भाव-सवलित रूप का आदर्श भी प्रस्तुत करती है। 13

इन कवियों की दृष्टि न सो सीता के पतिव्रत पर गई. न सावित्री के सतीत्य पर न पार्वती की पावनता पर गई और न ही यशोधा की ममतामयी मातृ-गरिमा पर रीतिव कवियों के द्वारा तो नारी के सामाजिक जीवन के महत्त्व का उद्घाटन हो ही नहीं पाया, रीतिमुक्त कवियों में भी उसका यह महत्त्व व्यक्त नहीं हो पाया। सभी बंधी बधाई लकीर पर उसके अंग-प्रत्यंग की शोभा हाव-भाव और विलास चेष्टाओं का वर्णन करते रहे। इस सम्मान में आचार्य हजारी प्रसाद के शब्द विशिष्ट रूप में अपलोकनीय है-यही नारी कोई व्यक्ति या समाज के संगठन की इकाई नहीं है , बल्कि सब प्रकार की विशेषताओं के बन्धन से यथासम्भव मुक्त विलास का एक उपकरण मात्रा है

आधुनिक काल : अनुनिक काल में सर्वप्रथम भारतेन्दु युग आता है। इस काल के कवियों की दृष्टि नारी के विविध रूपों पर तो अवश्य गई है किन्तु वे उसकी शक्ति के प्रति पूर्णतः आश्वस्त नहीं जान पड़ते। इस युग में नारी के प्रति परम्परागत दृष्टिकोन होते हुए भी नारी निपट भोग्या या उपेक्षित नहीं रही उसकी हीन-दशा के प्रति भी कवि की सहानुभूति सजग हुई और उसको आवश्यक आदर देने की दिशा में भी ये कवि अग्रसर हुए।

द्विवेदी युगीन काव्य में नारी सबकी दो दृष्टियाँ मिलती है-पएक रीतिकाव्य के अवशेष रूप से उसी परम्परा की कड़ी में जुटी हुई भारतेन्दु और बदरीनारायण प्रेमान की नायिकाएँ । 14 दूसरी युग चेतना से प्रभावित गुप्त और हरि के नारी चित्राण गुप्त जी ने नारी चरित्रों का सर्जन पुरुषों की भोग्या एवं काम्या के रूप में नहीं वरन पुरुष की संगिनी वाली भावना से किया है। साकेत यशा और विष्णुप्रिया नारी प्रथम कृतियाँ है गुप्त जी कहते है कि नारी को मानवतावादी मूल्य , भावनाशील दृष्टि और सामाजिक सम्पन्नता की कसौटी पर परखते हैं । 15

निराला यह मानकर चलते है कि नारी का सौन्दर्य रीतिकालीन कवियों के माराल चित्राण में सीमित नही वरन विस्तृत दिव्य और रमणीय है [16] इन कवियों ने नारी का भाव-चित्राण ही किया है, नारी सम्बनी अपनी मानसिक प्रतिमा का ही निर्माण किया है इसलिए इनकी नारी वस्तुनिष्ठ न होकर आत्मनिष्ठ है. मासल न होकर सूक्ष्म है। यह काल्पनिक और वायसी है।

निष्कर्ष :

नारी सम्पूर्णता का दूसरा पहलू है। वह न केवल पुरुष को पूर्णता प्रदान करती है बल्कि दुनिया का आप प्रतिनिधिच भी उसके हाथों में है अनादिकाल से नारी पूजनीय रही है इसीलिए पुरुष को यदि शिव का प्रतिरूप माना गया तो नारी को शक्ति का इस सृष्टि को सुन्दरतम कृति नारी ही है इसलिए उसको

सृष्टि की साना और प्रकृति का मूर्त रूप माना गया है , किन्तु सामाजिक परिस्थितियों के चलते वैदिक काल के बाद नारी को निम्न दृष्टि से देखा जाने लगा और रीतिकाल आते-आते नारी एक उपभोग की वस्तु बनकर रह गई। नारी का जितना शोषण पिछले 50-55 वर्षों में हुआ है. वह नारी के प्रति विकृत मानसिकता का ही पर्याय है परन्तु पिफर भी नारी की उत्पत्ति ही पुरुष के अस्तित्व की पहचान है नारी ही यह चेतनाद शक्ति है जो सृष्टि संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।